हरी बाँसुरी सुनहरी टेर

सुमित्रानंदन पंत

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

विज्ञापन

'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर' में मेरे श्रृंगार काव्य के सा रे ग म संकलित हैं, जिन्हें पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली को है; जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

२० जनवरी, १९६३ —सुमित्रानंदन पंत

झंकार

जब जीवन के स्रोत सम्मिलित
हो जाते हैं किसी प्रकार,
उन्हें नहीं तब बिछुड़ा सकता
सखे, स्वयं तारक करतार !

ग्रंथि

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल ;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे,
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से!
जानकर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कई
सफल होने को अवनि के ईश से!

अस्तमित निज कनक किरणों को तपन
चरम गिरि को खींचता था कृपण सा,
अरुण आभा में रँगा था वह पतन
रजकणों सी वासनाओं से विपुल!
तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में ;
सांध्य निःस्वप्न-से गहन जल गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

बुदबुदे जिन चपल लहरों में प्रथम
गा रहे थे राग जीवन का अचिर
अल्प पल, उनके प्रबल उत्थान में
हृदय की लहरें हमारी सो गईं!

× × ×

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह?) पीयूष सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन सा मुझे तब दे रहा!
शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर,
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से!

इंदु पर, उस इंदु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछबि के काव्य में!

एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,

चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था!
लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से!

(इन गढ़ों में—रूप के आवर्त-से—
घूम फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे, भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के?)
सुभग लगता है गुलाब सहज सदा,
क्या उषामय का पुनः कहना भला?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेब की चिर सरसता, सुकुमारता?
पद नखों को गिन, समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अवनितल
खुरच कर, वह जड़ पलों की धृष्टता
थी वहाँ मानो छिपाना चाहती!

× × ×

इंदु की छबि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की बीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में!

निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी!
प्रथम केवल मोतियों को हंस जो
तरसता था, अब उसे तर सलिल में
कमलिनी के साथ क्रीड़ा की सुखद
लालसा पल पल विकल थी कर रही!
रसिक वाचक! कामनाओं के चपल,
समुत्सुक, व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण बीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला?

× × ×

हाँ, तरणि थी मग्न जब मेरी हुई
(सरस मोती के लिए ही?) उस समय
छलकता था वक्ष मेरा स्फीति से,
मुग्ध विस्मय से, अतृप्त भुलाव से!
बाल्य की विस्मय भरी आँखें, मृदुल
कल्पना की कृश लटों में उलझ के
रूप की सुकुमार कलिका के निकट
झूम, मँडराने लगी थीं घूम कर!
चपल पलकों में छिपे सौन्दर्य के
सहज दब कर, हृदय मादकता मिली

गुदगुदी के स्निग्ध पुलकित स्पर्श को
समुत्सुक होने लगा था प्रतिदिवस !

दृष्टिपथ पर दूर अस्फुट प्यास सी
खेलती थी, एक रजत मरीचिका,
शरद के बिखरे सुनहले जलद सी
बदलती थी रूप आशा निरंतर !
अह, सुरा का बुलबुला यौवन, धवल
चंद्रिका के अधर पर अटका हुआ,
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक
जलद सा है सहज ले जाता उड़ा !

× × ×

हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बंधन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया !
पाणि ! कोमल पाणि ! निज बंधूक की
मृदु हथेली में सरल मेरा हृदय
भूल से यदि ले लिया था, तो मुझे
क्यों न वह लौटा दिया तुमने पुनः ?

प्रणय की पतली अँगुलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढ़ीं ? जो हृदय को
याद आते ही, विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर, मुग्ध कर !

याद है मुझको अभी वह जड़ समय
ब्याह के दिन जब विकल दुर्बल हृदय
अश्रुओं से तारकों को विजन में
गिन रहा था, व्यस्त हो, उद्भ्रांत हो !

हाय रे मानव हृदय ! तुमसे जहाँ
वज्र भी भयभीत होता है, वहीं
देख तेरी मृदुलता तिल सुमन भी
संकुचित हो, सहम जाता है सदा !
ग्रंथि बंधन !—इस सुनहली ग्रंथि में
स्वर्ग की औ' विश्व की मंगलमयी
जो अनोखी चाह, जो उन्मत्त धन
है छिपा, वह एक है, अनमोल है !

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को,
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उड़गणो ! गाओ, पवन-वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी !
देख रोता है चकोर इधर, वहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को,

वह, मधुप बिंध कर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय, रो !

× × ×

छिः सरल सौन्दर्य ! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो ! सुकुमार, यों
पलक दल में, तारकों में, अधर में
खेल कर तुम कर रहे हो हाय ! क्या ?
जानते हो क्या ? सुकोमल गाल पर
कृश अँगुलियों पर, कटी कटि पर छिपे,
तुम मिचौनी खेल कर कितना गहन
घाव करते हो सुमन-से हृदय में !

औ' अकेले चिबुक तिल से, कुछ उठी
कुछ गिरी भ्रू वीचि से, कुछ-कुछ खुली
नयनता से, कुछ रुकी मुसकान से
छीनते किस भाँति हो तुम धैर्य को ?
मुकुल के भीतर उषा की रश्मि से
जन्म पा, मधु की मधुरता, धूलि की
मृदुलता, कटु कंटकों की प्रखरता,
मुग्धता ली मधुप की तुमने चुरा !

और, भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है !

पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे हृदय को छीन कर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में!

स्मृति! यदपि तुम प्रणय की पद चिह्न हो,
पर निरी हो बालिका—तुम हृदय को
गुदगुदाती हो, तरल जल बिम्ब सी
तैरती हो, बाल क्रीड़ा कर सदा!
नियति! तुम निर्दोष और अछूत हो,
सहज हो सुकुमार, चकई का तुम्हें
खेल अति प्रिय है, सतत कृश सूत्र से
तुम फिराती हो जगत को समय सा!
मंजु छाया के विपिन में पूर्णिमा
सजल पत्रों से टपकती है जहाँ,
विचरती हो वेश प्रतिपल बदल कर
सुघर मोती-से पदों से ओस के!

अमृत आशा! चिर दुखी की सहचरी
नित नई मिति सी, मनोरम रूप सी,
विभव वंचित, तृषित, लालायित नयन
देखते हैं सदय मुख तेरा सदा!

देवि! ऊषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,

रेणु की साड़ी पहन, चल तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को !

मेघ-से उन्माद ! तुम स्वर्गीय हो,
कुमुद कर से जन्म पा, तुम मधुप के
गीत पीकर मत्त रहते हो सदा,
मौन, चिर अनिमेष, निर्जन पुष्प-से !

आह !—सूखे आँसुओं की कल्पना,
कोहरे सी मुक्त नभ में झूम कर,
दग्ध उर का भार हर, तुम जलद सी
बरसती हो स्वच्छ हलकी शांति में !
अश्रु,—हे अनमोल मोती दृष्टि के !
नयन के नादान शिशु ! इस विश्व में
आँख हैं सौन्दर्य जितना देखतीं
अतनु ! तुम उससे मनोरम हो कहीं !

अश्रु !—दिल की गूढ़ कविता के सरल
औ' सलोने भाव ! माला की तरह
विकल पल में पलक जपते हैं तुम्हें,
तुम हृदय के घाव धोते हो सदा !
वेदने ! तुम विश्व की कृश दृष्टि हो,
तुम महा संगीत, नीरव हास हो,
है तुम्हारा हृदय माखन का बना,
आँसुओं का खेल भाता है तुम्हें !

वेदना !—कैसा करुण उद्‌गार है !
वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना !
वेदना !—कितना विशद यह रूप है !
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा !
रूप की अंतिम छटा ! इस विश्व की
अगम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी !

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है !
वह मधुप बिंध कर तड़पता है, उधर
दग्ध चातक तरसता है—विश्व का
नियम है यह ; रो अभागे हृदय रो ! !

× × ×

कौन वह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा
पोंछ सकता है ? दृगों की बाढ़ में
विकल, बिखरे बुदबुदों की बूड़ती
मौन आहें हाय ! कौन समझ सका !
शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोंक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा ! !

× × ×

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को
है कहाँ आश्रय ! विरह की वह्नि में

भस्म होकर हृदय की दुर्बल दशा
हो गई परिणत विरति सी शक्ति में!
सुहृद्वर! कंगाल, कृश कंकाल सा,
भैरवी से भी सुरीला है अहा!
किस गहनता के अधर से फूट कर
फैलते हैं शून्य स्वर इसके सदा!

आज मैं कंगाल हूँ—क्या यह प्रथम
आज मैंने ही कहा? जो हृदय! तुम
बह रहे हो मुक्त हलके मोद में
भूल कर दुर्दैव के गुरु भार को!
मैं अकेला विपिन में बैठा हुआ
सींचता हूँ विजनता से हृदय को,
और उसकी भेदती कृश दृष्टि से
ढूंढता हूँ विश्व के उन्माद को!

विश्व,—यह कैसी मनोहर भूल है!
मधुर दुर्बलता!—कई छोटी बड़ी
अल्पताएं जोड़, लीला के लिए,
यह निराला खेल क्या विधि ने रचा?
कौन सी ऐसी परम वह वस्तु है
भटकते हैं मनुज-गण जिसके लिए?
कौन सा ऐसा चरम सौन्दर्य है
खींचता है जो जगत के हृदय को?

आह, उस सर्वोच्च पद की कल्पना
विश्व का कैसा उथल उन्माद है!
यह विशाल महत्त्व कितना रिक्त है,
विपुलता कितनी अबल, असहाय है!
कौन सी ऐसी निरापद है दशा
लोग अभ्युत्थान कहते हैं जिसे?
पतन, इसमें कौन-सा अभिशाप है
जो कँपाता है जगत के धैर्य को?

निपट नग्न निरीहता को छोड़कर
कौन कर सकता मनोरथ पूर्ति है?
कौन अज्ञ दरिद्रता से अधिकतर
शक्तिमय है, श्रेष्ठ है, संपन्न है?
सौख्य? यह तो साधना का शत्रु है,
रिक्त, कुंठित क्षीणता है शक्ति की;
हा! अलस के इस अपाहिज स्वाँग में
हो गई क्यों मग्न जग की गहनता!

ज्ञान? यह तो इन्द्रियों की भ्रान्ति है,
शून्य जृंभा मात्र निद्रित बुद्धि की,
जुगनुओं की ज्योति से, वन में विजन,
जन्म पीपल के तले इसका हुआ!
वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परम पद

वेदना ही का मनोहर रूप है,
वेदना ही का स्वतन्त्र विनोद है!

वेदना से भी निरापद क्या अहा
और कोई शरण है संसार में?
वेदना से भी अधिक निर्भय तथा
निष्कपट साम्राज्य है क्या स्वर्ग का?
कर्म के किस जटिल विस्तृत जाल में
है गुँथी ब्रह्मांड की यह कल्पना!
योग बल का अटल आसन है अड़ा
वेदना के किस गहन स्तर में अहा!

आज मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में,
विजन छाया में द्रुमों की, योग सी,
विचरती है आज मेरी वेदना!
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद सी मेरी स्पृहा,
ललित लतिका के विकंपित अधर में
काँपती है आज मेरी कल्पना!

ओस जल-से सजल मेरे अश्रु हैं
पलक दल में दूब के बिखरे पड़े!
पवन पीले पात में मेरा विरह
है खिलाता, दलित मुरझे फूल सा!

सुमन दल में फूट, पागल-सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हँस रही है, मुकुल में
वास है अज्ञात भावी कर रही
आज मेरी द्रौपदी सी परवशा !

गर्व-सा गिर उच्च निर्झर स्रोत से
स्वप्न सुख मेरा शिलामय हृदय में
घोष भीषण कर रहा है वज्र सा,
वात सा, भूकम्प सा, उत्पात सा !
तारकों के अचल पलकों से विपुल
मौन विस्मय छीन कर मेरा पतन
निर्निमेष विलोकता है विश्व की
भीरुता को चन्द्रमा की ज्योति में !

तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी
झूमती है भ्रान्ति मेरी भ्रमर सी,
चन्द्रिका की लहर में है खेलती
भग्न आशा आज शत शत खंड हो !
तिमिर ! —यह क्या विश्व का उन्माद है,
जो छिपाता है प्रकृति के रूप को ?
या किसी की यह विनीरव आह है
खोजती है जो प्रलय की राह को !

या किसी के प्रेम वंचित पलक की
मूक जड़ता है ? पवन में विचर कर,

पूछती है जो सितारों से सतत—
'प्रिय ! तुम्हारी नींद किसने छीन ली ?'
यह किसी के रुदन का सूखा हुआ
सिन्धु है क्या ? जो दुखों की बाढ़ में
सृष्टि की सत्ता डुबाने के लिए
उमड़ता है एक नीरव लहर में !

आह, यह किसका अँधेरा भाग्य है ?
प्रलय छाया सा, अनन्त विषाद सा !
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों सा यह अभय है घूमता ?
हृदय ! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा !
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
बदन ढँकने के लिए क्यों व्यग्र है !

उच्छ्वास

(सावन भादों)

(सावन)

सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल-बादल-सा उठकर आज
सरल, अस्फुट उच्छ्वास !
अपने छाया के पंखों में
(नीरव-घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गंभीर-मेघ-सा,
आच्छादित कर ले सारा आकाश !
यह अमूल्य मोती का साज,
इन सुवर्णमय, सरस परों में
(शुचि-स्वभाव से भरे सरों में)
तुझको पहना जगत देख ले—यह स्वर्गीय-प्रकाश !

मंद, विद्युत-सा हँसकर,
वज्र-सा उर में धँसकर,
गरज, गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरो में, औ' अधरों में,

बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में,
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में।

हृदय के सुरभिस-साँत !
जरा है आदरणीय,
सुखद यौवन ! विलास-उपवन रमणीय,
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय,

—बालिका ही थी वह भी !
सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान-नयन,
सहज था सजा सजीला-तन !

सुरीले, ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका-गान
विकच बचपन को, मन को खींच
उचित बन जाता था उपमान।

छपी-सी पी-सी मृदु-मुसकान
छिपी-सी, खिंची सखी-सी साथ,
उसीकी उपमा-सी बन, मान
गिरा का धरती थी, धर हाथ।

रँगीले, गीले फूलों-से
अधखिले-भावों से प्रमुदित

बाल्य-सरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित।
—इसी में था असीम अवसित !

मधुरिमा के मधुमास !
मेरा मधुकर का-सा जीवन,
कठिन कर्म है, कोमल है मन,
विपुल मृदुल-सुमनों से सुरभित,
विकसित है विस्तृत-जग-उपवन !

यही हैं मेरे तन, मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभिमान,
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय-गान !

कुटिल-काँटे हैं कहीं कठोर,
जटिल तरु-जाल हैं किसी ओर
सुमन-दल चुन-चुन कर निशि भोर
खोजना है अजान वह छोर !
—नवल-कलिका थी वह।

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया
नित मधुर मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया।

कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्प-लता, अपनाया
बहु नवल - भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।

मैं मन्द-हास-सा उसके
मृदु - अधरों पर मँडराया,
औ' उसकी सुखद-सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिंच आया।

पावस-ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार,
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल!!

गिरि का गौरव गाकर झर झर
मद से नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों-से सुंदर
झरते हैं झाग भरे निर्झर!
गिरिवर के उर से उठ-उठकर
उच्चाकांक्षाओं - से तरुवर

हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर !

—उड़ गया, अचानक, लो, भूधर
फड़का अपार वारिद के पर !
रव-शेष रह गए हैं निर्झर,
है टूट पड़ा भू पर अम्बर !
धँस गए धरा में समय शाल !
उठ रहा धुँआ, जल गया ताल !
—यों जलद-यान में विचर, विचर,
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !
(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर !)

इस तरह मेरे चितेरे-हृदय की
बाह्य-प्रकृति बनी चमत्कृत-चित्र थी,
सरल-शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम-मित्र थी।

(भादों)

दीप के बचे-विकास !
अनिल-सा लोक में,
हर्ष में और शोक में,
कहाँ नहीं है स्नेह ? साँस-सा सबके उर में !

रुदन, क्रीड़न, आलिंगन,
भरण, सेवन, आराधन,
शशि की-सी ये कलित-कलाएँ किलक रही है पुर-पुर में।

यही तो है बचपन का हास,
खिले-यौवन का मधुप-विलास,
प्रौढ़ता का वह बुद्धि-विकाश,
जरा का अन्तर्नयन - प्रकाश !
जन्मदिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ-निःश्वास !

है यह वैदिक-वाद
विश्व का सुख-दुखमय उन्माद
एकतामय है इसका नाद:—

गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव-भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण !

अश्रुओं में रहता है हास,
हास में अश्रुकणों का भास,
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास,
और उच्छ्वासों ही में श्वास !

बँधे हैं जीवन-तार,
सब में छिपी हुई है यह झंकार !

हो जाता संसार
नहीं तो दारुण हाहाकार!

मुरली के से सुरसील
इसके हैं छिद्र सुरीले,
अगणित होने पर भी तो
तारों-से हैं चमकीले!

अचल हो उठते हैं चंचल,
चपल बन जाते हैं अविचल,
पिघल पड़ते हैं पाहन-दल,
कुलिश भी हो जाता कोमल!

चढ़ाता भी है तो गुण से
डोर कर में है, मन आकाश,
पटकता भी है तो गुण से,
खींचने को चकई-सा पास!

मर्म-पीड़ा के हास!
रोग का है उपचार,
पाप का भी परिहार,
है अदेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार!
हृदय की है यह दुर्बल-हार!!

खींचलो इसको, कहीं क्या छोर है?
द्रौपदी का यह दुरंत-दुकूल है!

फैलता है हृदय में नभ-बेलि सा,
खोजलो, इसका कहीं क्या मूल है ?

यही तो काँटे-सा चुपचाप
उगा उस तरुवर में सुकुमार
सुमन वह था जिसमें अविकार—
बेध डाला मधुकर निष्पाप ! !

बड़ों में दुर्बलता है शाप !
नहीं चल सकते गिरिवर राह,
न रुक सकता है सौरभवाह !
तरल हो उठता उदधि-अथाह,
सूर का दुख देता है दाह !
देख हाय ! यह, उर से रह रह निकल रही है आह,
व्यथा का रुकता नहीं प्रवाह !

सिड़ी के गूढ़-हुलास !
बीनते हैं प्रसून-दल
तोड़ते ही हैं मृदु-फल
देखा नहीं किसी को चुनते कोमल-कोंपल ! !

अभी पल्लवित हुआ था स्नेह,
लाज का भी न गया था राग,
पड़ा पाला-सा हा ! सन्देह,
कर दिया वह नव-राग विराग !

हो गया था पतझड़, मधुकाल,
पत्र तो आते हाय, नवल !
झड़ गए स्नेह-वृन्त से फूल,
लगा यह असमय कैसा फल !!

मिले थे दो मानस अज्ञात,
स्नेह-शशि बिम्बित था भरपूर,
अनिल-सा कर अकरुण आघात,
प्रेम-प्रतिमा कर दी वह चूर !!

घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन-चक्र !
ढाल-सा रखवाला-शशि आज
हो गया है हा ! असि-सा वक्र !!

बालक का-सा मारा हाथ,
कर दिए विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार,
यही था हा ! क्या एक सितार ?

हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन-धार !

कहाँ है उत्कंठा का पार !!
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार !
तुम्हें, जो चाहो, है अधिकार !
टूट जा यहीं यह हृदय - हार !!!

कौन जान सका किसी के हृदय को ?
सच नहीं होता सदा अनुमान है !
कौन भेद सका अगम आकाश को ?
कौन समझ सका उदधि का गान है ?
है सभी तो और दुर्बलता यही,
समझता कोई नहीं—क्या सार है !
निरपराधों के लिए भी तो अहा !
हो गया संसार कारागार है !!

आँसू

(भादों की भरन)

(१)

अपलक आँखों में
उमड़ उर के सुरभित-उच्छ्वास !
सजल जलधर से बन जलधार,
प्रेममय वे प्रिय पावस-मास
पुनः नयनों में कर साकार,
मूक कणों की कातर वाणी भर इनमें अविकार,
दिव्य स्वर पा आँसू का तार
बहा दे हृदयोद्गार !

आह, यह मेरा गीला गान !
वर्ण वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द शब्द है सुधि की दंशन,
चरण चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण अथाह,
बूँद में है बाड़व का दाह !

प्रथम भी ये नयनों के बाल
खिलाए हैं नादान,
आज मणियों ही की तो माल
हृदय में बिखर गई अनजान!
टूटते हैं असंख्य उड़गन,
रिक्त हो गया चाँद का थाल!
गल गया मन-मिश्री का कन,
नई सीखी पलकों ने बान!

विरह है अथवा यह वरदान!
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है!

वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान!
हाय किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार,
किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार!!

मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे, धुँधले, धुले, साँवले,
मेघों-से मेरे भरे नयन !
कभी उर में अगणित मृदु भाव
कूजते हैं विहगों-से हाय !
अरुण कलियों-से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय !

इन्द्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर
कभी कुहरे-सी धूमिल घोर,
दीखती भावी चारों ओर !

तड़ित-सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं-से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान !

धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम-व्योम प्रवाल
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल !

पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन - पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
—धुँए का विश्व विशाल !

चिनगियों - से तारों को डाल
आग का-सा अँगार शशि लाल
लहकता है,—फैला मणि जाल
जगत को डसता है तम व्याल !

पूर्व सुधि सहसा जब सुकुमारि !
सरल शुक-सी सुखकर सुर में
तुम्हारी भोली बातें
कभी दुहराती हैं उर में !

अगन-से मेरे पुलकित-प्राण
सहस्रों सरस स्वरों में कूक
तुम्हारा करते हैं आह्वान,
गिरा रहती है श्रुति-सी मूक !

देता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये ! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को !

नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के

प्रसूनों के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर!
अकेली-आकुलता-सी प्राण!
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गत,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात!

देखता हूँ, जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला!
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान,
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान!

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल!
अवनि औ' अंबर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल!
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मेमनों-से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर!

द्विरद दन्तों-से उठ सुन्दर
सुखद कर-सीकर से बढ़ कर,
भूति-से शोभित बिखर-बिखर,
फैल फिर कटि के-से परिकर,
बदल यों विविध वेश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर !

इन्द्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल-बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते विशिखों की धार;
मरुत जब उनको द्रुत चुमकार,
रोक देता था मेघासार !

अचल के जब वे विमल विचार
अवनि से उठ उठ कर ऊपर,
विपुल व्यापकता में अविकार
लीन हो जाते थे सत्वर,
विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अम्बर !

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर-झर;
झींगुरों की झीनी झनकार,
घनों की गुरु गम्भीर घहर;

बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल पावस के प्रश्नोत्तर !

खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यों बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झुला झरनों की झलमल हार,
जलद-पट से दिखला मुख-चन्द्र,
पलक पल-पल चपला के मार,
भग्न उर पर भूधर-सा हाय !
सुमुखि ! धर देती है साकार !

(२)

करुण है हाय ! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव;
करुणतर है वह भय,
चाहता है जो सदा बचाव;

करुणतम भग्न - हृदय,
नहीं भरता है जिसका घाव;
करुण अतिशय उनका संशय
छुड़ाते हैं जो जुड़े स्वभाव !!

किए भी हुआ कहाँ संयोग ?
टला टाले कब इसका वास ?
स्वयं ही तो आया यह पास,
गया भी, बिना प्रयास !
कभी तो अब तक पावन-प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय, क्या गंगाजल की धार ! !
हृदय ! रो, अपने दुख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो, यह जड़ स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर-संचार !
प्रथम, इच्छा का पारावार,
सुखद आशा का स्वर्गाभास,
स्नेह का वासन्ती संसार,
पुनः उच्छ्वासों का आकाश !
—यही तो है जीवन का गान,
सुख का आदि और अवसान !

सिसकते हैं समुद्र-से मन,
उमड़ते हैं नभ-से लोचन,
विश्व वाणी ही है क्रन्दन
विश्व का काव्य अश्रु कन !

गगन के भी उर में हैं घाव,
देखतीं ताराएँ भी राह,
बँधा विद्युत् छवि में जलवाह
चन्द्र की चितवन में भी चाह;
दिखाते जड़ भी तो अपनाव
अनिल भी भरती ठण्डी आह!

हाय! मेरा जीवन,
प्रेम औ' आँसू के कन!
आह मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन!
—एक वीणा की मृदु झंकार
कहाँ है सुन्दरता का पार!
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि!
दिखाऊँ मैं साकार?
तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान!
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों का गान!
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार!
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार!

करुण भोहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार,
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार!

कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव,
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव!
उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस!
बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसन्त
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत!

विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार
पूजता हूँ मैं तुम्हें, कुमारि!
मूँद दुहरे दृग द्वार!
अचल पलकों में मूर्ति सँवार
पान करता हूँ रूप अपार,

पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल चलती है दृगजल धार !
बालकों-सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अनजान,
न जाने, होकर भी असहाय,
पुनः किससे करता हूँ मान !

सुप्ति हो स्वल्प वियोग
नव मिलन को अनिमेष
दैव ! जीवन भर का विश्लेष···
मृत्यु ही है निःशेष ! !

मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को
थाम ले अब, हृदय, इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को !
तेरे उज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न-हृदय, उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा !

स्मृति

(उच्छ्वास की बालिका के प्रति)

आँखों में 'आँसू' भर अनजान,
अधर पर धर 'उच्छ्वास'
समाती है जब उर में प्राण !
तुम्हारी सुधि की सुरभित साँस,
डुबो देता है मुझे सदेह
सूर - सागर वह स्नेह !

रूप का राशि - राशि वह रास,
दृगों की यमुना श्याम,
तुम्हारे स्वर का वेणु विलास
हृदय का वृंदा धाम,

देवि, मथुरा था वह आमोद,
दैव ; ब्रज, अह, यह विरह विषाद !
आह, वे दिन ! —द्वापर की बात !
भूति ! —भारत को ज्ञात ! !

भावी पत्नी के प्रति

प्रिये, प्राणों की प्राण !
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओं की सी वाण,
बाल रति सी अनुपम, असमान—
न जाने, कौन कहाँ, अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

जननि अंचल में झूल सकाल
मृदुल उर कंपन सी वपुमान,
स्नेह सुख में बढ़ सखि ! चिरकाल
दीप की अकलुष शिखा समान;
कौन सा आलय, नगर विशाल
कर रही तुम दीपित, द्युतिमान ?
शलभ-चंचल मेरे मन-प्राण,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात,
नील नभ-अंतःपुर में, तन्वि!
दूज की कला सदृश नवजात;
मधुरता, मृदुता सी तुम, प्राण
न जिसका स्वाद-स्पर्श कुछ ज्ञात,
कल्पना हो, जाने, परिणाम?
प्रिये, प्राणों की प्राण!

हृदय की पलकों में गति-हीन
स्वप्न संसृति सी सुषमाकार,
बाल भावुकता बीच नवीन
परी सी धरती रूप अपार,
झूलती उर में आज, किशोरि!
तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान,
लाज में लिपटी उषा समान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख श्री सौरभ का सार
मनोभावों का मधुर विलास,
विश्व सुषमा ही का संसार;
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम-बाला का शरदाकाश;

तुम्हारा आता जबप्रिय ध्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरुण अधरों की पल्लव-प्रात
मोतियों-सा हिलता-हिम-हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल-विद्युत् का पावस-लास;
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले-अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

खेल सस्मित सखियों के साथ
सरल शैशव सी तुम साकार,
लोल कोमल लहरों में लीन
लहर ही-सी कोमल लघु-भार,
सहज करती होगी, सुकुमारि !
मनोभावों से बाल विहार
हंसिनी सी सर में कल - तान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

खोल सौरभ का मृदु कच-जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,

सीखते होंगे उड़ खग-बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद;
चूम लघु पद चंचलता, प्राण!
फूटते होंगे नव जलस्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
प्रणय का - सा नव गान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न-सा विस्मय-सा अम्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकंपित मृदु-उर, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित-पलक-दृग्-पात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
मधुरता में सी भरी अजान
लाज की छुईमुई सी म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण!

सुमुखि, वह मधुक्षण ! वह मधुबार !
धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव बार;
अधर-उर से उर अधर समान
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अरे चिर गूढ़ प्रणय आख्यान !
जब कि रुक जाएगा अनजान
साँस-सा नभ उर में पवमान,
समय निश्चल, दिशि पलक समान;
अवनि पर झुक आएगा, प्राण !
व्योम चिर, विस्मृति से म्रियमाण;
नील सरसिज-सा हो-हो म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

प्रतीक्षा

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से !

लहरें अधीर सरसी में
तुमको तकतीं उठ-उठ कर,
सौरभ-समीर रह जाता
प्रेयसि, ठंडी साँसें भर !

हैं मुकुल मुँदे डालों पर,
कोकिल नीरव मधुवन में;
कितने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में !

तुम आओगी, आशा में
अपलक हैं निशि के उडगण !
आओगी, अभिलाषा से
चंचल, चिर नव, जीवन-क्षण!

स्मिति

मुसकुरा दी थीं क्या तुम, प्राण !
मुसकुरा दी थीं आज विहान ?

आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद-कलियों की कोमल-प्रात !

मुसकुरा दी थीं बोलो, प्राण !
मुसकुरा दी थीं तुम अनजान ?

आज छाया चहुँदिशि चुपचाप
मृदुल मुकुलों का मौनालाप,
रुपहली कलियों से कुछ लाल,
लद गईं पुलकित पीपल डाल;

और वह पिक की मर्म पुकार
प्रिये ! झर-झर पड़ती साभार,
लाज से गड़ी न जाओ, प्राण !
मुसकुरा दी क्या आज विहान ?

नील कमल

नील कमल-सी हैं वे आँख !

डूबे जिनके मधु में पाँख—
मधु में मन-मधुकर के पाँख;

नील जलज-सी हैं वे आँख !

मुग्ध स्वर्ण किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात;
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी नवजात;
जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात;
आकुल लहरों ने तत्काल
उनमें चंचलता दी ढाल,

नील नलिन-सी हैं वे आँख !

जिनमें बस उर का मधुबाल
कृष्ण कनी बन गया विशाल;

नील सरोरुह-सी वे आँख !

मन विहग

तुम्हारी आँखों का आकाश !
सरल आँखों का नीलाकाश—

खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अज्ञान !

देख इनका चिर करुण प्रकाश,
अरुण कोरों में उषा विलास,
खोजने निकला निभृत निवास,
पलक पल्लव प्रच्छाय निवास;

न जाने ले क्या-क्या अभिलाष
खो गया बाल विहग नादान !

तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश !

गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार,
न गहने को तृण का आधार;

बसाएगा कैसे संसार,
प्राण ! इनमें अपना संसार !

न इनका ओर-छोर रे पार,
खो गया वह नव पथिक अजान !

प्रेम नीड़

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !

आज मधुवन की उन्मद वात
हिला रे गई पात सा गात,
मंद्र द्रुम मर्मर सा अज्ञात
उमड़ उठता उर में उच्छ्वास !

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !

मदिर कोरों - से कोरक जाल
बेधते मर्म बार रे बार,
मूक चिर प्राणों का पिक बाल
आज कर उठता करुण पुकार;

अरे अब जल-जल नवल प्रवाल
लगाते रोम-रोम में ज्वाल,
आज बौरे रे तरुण रसाल
भौंर-मन मँडरा गई सुवास !

गृह काज

आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण! रहने दो यह गृह काज!

आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष!

आज उर के स्तर-स्तर में, प्राण!
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार!

शिथिल, स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल,
सुमुखि, उर के सुख से वाचाल!

आज चंचल - चंचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल-शिथिल तन-भार,
आज दो प्राणों का दिन-मान
आज संसार नहीं संसार !

आज क्या प्रिये, सुहाती लाज !
आज रहने दो सब गृह काज !

मधुवन

आज नव मधु की प्रात
झलकती नभ-पलकों में, प्राण !
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान,—
झलकती, मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात
तुम्हारी, मुख-छबि सी रुचिमान !

आज लोहित मधु-प्रात
व्योम-लतिका में छायाकार
खिल रही नव पल्लव सी लाल,
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार
लाज का ज्यों मृदु किसलय जाल !

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इंदीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरंद समान,
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण !

आज स्वर्णिम मधु-प्रात
व्योम के विजन कुंज में, प्राण
खुल रही नवल गुलाब समान,
लाज के विनत वृंत पर ज्यों अभिराम
तुम्हारा मुख-अरविन्द सकाम !

प्रिये, मुकुलित मधु-प्रात
मुक्त नभ - वेणी में सोभार
सुहाती रक्त पलाश समान;
आज मधुवन मुकलों में झुक साभार
तुम्हें करता निज विभव प्रदान !

(२)

डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण व्रतति कुंज, तरु-पात,
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात
गुंज-मधु-गंध-धूलि-हिम - गात !

खोलने लगीं, शयित चिर काल,
नवल कलि अलस-पलक-दल जाल,
बोलने लगीं डाल से डाल,
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल बाल !

युवाओं का प्रिय पुष्प गुलाब,
प्रणय-स्मृति-चिह्न, प्रथम मधुवाल,

खोलता लोंचन-दल मदिराभ,
प्रिये, चल अलि दल से वाचाल !

आज मुकुलित-कुसुमित चहुँ ओर
तुम्हारी छवि की छटा अपार;
फिर रहे उन्मद मधु-प्रिय भौंर
नयन पलकों के पंख पसार !

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालसा की लौ-से उठ लाल !

कपोलों की मदिरा पी, प्राण !
आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक-नासा का धर ध्यान
बन गये पुष्प पलाश अराल !

खिल उठी चल दशनावलि आज
कुंद कलियों में कोमल आभ,
एक चंचल चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ !

तुम्हारे चल पद चूम निहाल
मंजरित अरुण अशोक सकाल,

स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत सिंचित प्रियंगु की बाल !

स्वर्ण-कलियों की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुमसे मृदु वास
तुम्हारी शुचि स्मिति से साभार,
भ्रमर को आने दे क्यों पास ?

देख चंचल मृदु-पटु पद-चार
लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिए उदार
नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मंदार !

तुम्हारी पी मुख-वास तरंग
आज बौरे भौंरे, सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि ! तुम सी बनने सुकुमार !

लालिमा भर फूलों में, प्राण !
सीखती लाजवती मृदु लाज,
माधवी करती झुक सम्मान
देख तुममें मधु के सब साज !

नवेली बेला उर की हार,
मोतिया मोती की मुसकान,

मोगरा कर्णफूल-सा स्फार,
अँगुलियाँ मदनबान की बान!

तुम्हारी तनु-तनिमा लघु-भार
बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल,
मृदुलता सिरिस-मुकुल सुकुमार,
विपुल पुलकावलि चीना-डाल!

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छबि-व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास!

(३)

वितरती गृह-वन मलय समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण!

बेलि-सी फैल-फैल नवजात
चपल, लघु-पद, लहलह, सुकुमार,
लिपट लगती मलयानिल गात
झूम, झुक-झुक सौरभ के भार!

आज, तृण छद, खग, मृग, पिक, कीर,
कुसुम, कलि, व्रतति, विटप, सोच्छ्वास
अखिल आकुल, उत्कलित, अधीर,
अवनि, जल, अनिल, अनल, आकाश !

आज वन में पिक, पिक में गान,
विटप में कलि, कलि में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण !
सलिल में लहर, लहर में लास !

देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में वाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान !

तरुण विटपों से लिपट सुजात
सिहरतीं लतिका मुकुलित गात,
सिहरतीं रह-रह सुख से, प्राण,
लोम-लतिका बन कोमल गात !

गंध-गुंजित कुंजों में आज
बँधे बाँहों में छायाऽलोक,
मर्मरित छत्र, पत्र-दल व्याज
लिए द्रुम, तुमको खड़ी विलोक !

मिल रहे नवल बेलि-तरु, प्राण !
शुकी-शुक, हंस-हंसिनी संग,
लहर - सर, सुरभि - समीर विहान,
मृगी-मृग, कलि-अलि, किरण-पतंग !

मिलें अधरों से अधर समान,
नयन से नयन, गात से गात,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
भुजों से भुज, कटि से कटि शात !

आज तन-तन मन-मन हों लीन,
प्राण ! सुख-सुख स्मृति-स्मृति चिरसात,
एक क्षण, अखिल दिशावधि-हीन,
एक रस, नाम - रूप - अज्ञात !

रूप तारा

रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम;
मृगेक्षिणि ! सार्थक-नाम !

एक लावण्य - लोक छविमान,
नव्य नक्षत्र समान,
उदित हो दृग-पथ में अम्लान
तारिकाओं की तान !
प्रणय का रच तुमने परिवेश
दीप्त कर दिया मनोनभ-देश;
स्निग्ध सौन्दर्य-शिखा अनिमेष !
अमंद अंनिन्द्य अशेष !

उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर
दिखा मुख कनक-किशोर
प्रेम की प्रथम मदिरतम-कोर
दृगों में दुरा कठोर;
छा दिया यौवन-शिखर अछोर
रूप किरणों में बोर;

सजा तुमने सुख-स्वर्ण-सुहाग,
लाज-लोहित-अनुराग !

नयन-तारा बन मनोभिराम,
सुमुखि, अब सार्थक करो स्वनाम !

तारिका-सी तुम दिव्याकार,
चंद्रिका की झंकार !
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार
अप्सरी सी लघु-भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार
प्रणय-हंसिनी सुकुमार ?
हृदय-सर में करने अभिसार,
रजत-रति स्वर्ण-विहार !

आत्म-निर्मलता में तल्लीन
चारु चित्रा सी; आभासीन !
अधिक छिपने में खुल अनजान
तन्वि ! तुमने लोचन मन छीन,
कर दिए पलक प्राण गति-हीन,
लाज के जल की मीन !
रूप की-सी तुम ज्वलित विमान,
स्नेह की सृष्टि नवीन !

हृदय-नभ-तारा बन छबिधाम
प्रिये! अब सार्थक करो स्वनाम!

प्रथम यौवन मेरा मधुमास,
मुग्ध उर मधुकर, तुम मधु, प्राण!
शयन लोचन, सुधि स्वप्न-विलास,
मधुर-तंद्रा प्रिय-ध्यान!
शून्य जीवन निसंग आकाश
इंदु-मुख इंदु समान;
हृदय सरसी, छबि पद्म विकास,
स्पृहाएँ ऊर्मिल-गान!

कल्पना तुममें एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम;
तुम्हारी छबि में प्रेम अपार,
प्रेम में छबि अभिराम?
अखिल इच्छाओं का संसार
स्वर्ण छबि में निज गढ़ छबिमान,
बन गई, मानसि! तुम साकार
देह दो एक-प्राण!

गीत

जब मिलते मौन-नयन पल-भर,
खिल-खिल अपलक कलियाँ सुंदर

देखतीं मुग्ध, विस्मित, नभ पर! जब०

तुम मदिर अधर पर मधुर अधर
धरते, झरते हिम-कण झर्-झर्
मोती के चुंबन से चूकर

मृदु मुकुलों के सस्मित मुख पर! जब०

तुम आलिंगन करते, हिमकर!
नाचतीं हिलोरें सिहर-सिहर।
सौ-सौ बाँहों में बाँहें भर

सर में, आकुल, उठ-उठ गिरकर। जब०

जब रहस - मिलन होता सुखकर,
स्वर्गिक सुख - स्वप्नों से सुंदर
भर जाता स्नेहातुर होकर,

अग-जग का विरह-विधुर अंतर। जब०

लहरों का गीत

अपने ही सुख से चिर चंचल
हम खिल-खिल पड़ती हैं प्रतिपल !
जीवन के फेनिल मोती को
ले-ले चल-करतल में टलमल !

जाने किस मधु का मलय परस
करता प्राणों को पुलकाकुल
जीवन की लहलह लतिका में
विकसा इच्छा के नव-नव दल !

सुन-सुन मधु मुरली की मृदु ध्वनि
गृह-पुलिन लाँघ, सुख से विह्वल,
हम हुलस नृत्य करतीं हिल-हिल,
खस-खस पड़ता उर से अंचल !

चिर जन्म-मरण को हँस-हँस कर
हम आलिंगन करतीं पल-पल,
फिर-फिर असीम से उठ-उठकर
फिर-फिर उसमें हो-हो ओझल !

हवा के झकोरों का गीत

हम चिर अदृश्य नभचर सुंदर
अपनी ही लघिमा पर निर्भर !
शोभित मृदु नीलांशुक तन पर,
स्मित तुहिन-वाष्प से पुलकित पर !

अपने ही सुख से सिहर-सिहर
नभ-वीणा के-से स्वर्गिक स्वर
छा लेते हम जग का अंबर
लहरा लहरों से लहरों पर !

अधरों में भर अस्फुट मर्मर,
साँसों से पी सौरभ सुखकर,
फिरते रहते हम निशि वासर
चढ़ चित्रग्रीव चल जलदों पर !

हम साँस-साँस में लास अमर
करते, दुर उर-उर के भीतर,

बनकर फिर झंझा से दुर्धर
द्रुत जीर्ण जगत दल लेत हर !
खिल उठते चपल परस पाकर
पुलकों से तृण तरुदल सत्वर,
नाचतीं संग विवसना लहर
बाँहों में कोमल बाँहें भर !

आम्र वन

मंजरित आम्र वन छाया में
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा-नभ गुंजित
नीचे चंद्रातप छना स्फार!

तुम मुग्धा थी, अति भावप्रवण,
उकसे थे अँबियों-से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज!
छनती थी ज्योत्स्ना शशिमुख पर,
मैं करता था मुख सुधा पान—
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गए गंध से मुग्ध प्राण!

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद;

था आत्म समर्पण सरल, मधुर
मिल गए सहज मारुतामोद!
मंजरित आम्र वन के नीचे
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
मधु के कर में था प्रणय-बाण,
पिक के उर में पावक पुकार!

विजन घाटी

वह विजन चाँदनी की घाटी
छाई मृदु वन तरु गंध जहाँ,
नीबू आड़ू के मुकुलों के
मद से मलयानिल लदा वहाँ !

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन,
बिछते झरझर मृदु सुमन शयन
जिन पर छन, कंपित पत्रों से,
लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ !

आ कोकिल का कोमल कूजन,
उकसाता आकुल उर कंपन,
यौवन का री, वह मधुर स्वर्ग,
जीवन बाधाएँ वहाँ कहाँ !

ग्राम युवती

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गजगति
सर्प डगर पर !

सरकाती - पट
खिसकाती-लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट !
हँसती खलखल,
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्वल दशनों से अधरों के तट !

वह मग में रुक,
मानो कुछ झुक,
आँचल सँभालती, फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट,
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक,
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूँद पलक पट !

पनघट पर
मोहित नारी नर ! —
जब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिंचते सँग युग रस भरे कलश—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट !

कानों में गुड़हल
खोंस, — धवल
या कुँई, कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिँगार से कच सँवार,
मृदु मौलसिरी के गूँथ हार,
गउओं सँग करती वन विहार,
पिक चातक के सँग दे पुकार—
वह कुंद, काँस से,
अमलतास से,
आम्र मौर, सहजन, पलाश से,
निर्जन में सज ऋतु सिंगार !
तन पर यौवन सुषमाशाली,
मुख पर श्रमकण, रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेड़ों पर आती जाती,
उरु मटकाती,
कटि लचकाती
चिर वर्षातम हिम की पाली
धनि श्याम वरण,
अति क्षिप्र चरण,
अधरों से धरे पकी बाली !

रे दो दिन का
उसका यौवन !

सपना छिन का
रहता न स्मरण!
दु:खों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण !!

रेखाचित्र

चाँदी की चौड़ी रेती,
फिर स्वर्णिम गंगा धारा,
जिसके निश्चल उर पर विजड़ित,
रत्न छाय नभ सारा !

फिर बालू का नासा,
लंबा ग्राह तुंड सा फैला,
छितरी जल रेखा—
कछार फिर गया दूर तक मैला !

जिस पर मछुओं की मँड़ई,
औ' तरबूजों के ऊपर,
बीच-बीच में, सरपत के मूठे
खग से खोले पर !

पीछे, चित्रित विटप पाँति
लहराई सांध्य क्षितिज पर,

जिससे सट कर, नील धूम्र
रेखा ज्यों खिंची समांतर !

बर्हंपिच्छ-से जलद पंख
अंबर में बिखरे सुन्दर
रंग-रंग की हलकी गहरी
छायाएँ छिटका कर !

सबसे ऊपर निर्जन नभ में,
अपलक संध्या तारा
नीरव औ' निःसंग,
खोजता सा कुछ, चिर पथहारा !

साँझ,—नदी का सूना तट,
मिलता है नहीं किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन,
साथी, स्नेह सहारा !

स्त्री

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी-उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर !

मादकता जग में कहीं अगर, वह नारी अधरों में सुखकर,
क्षण में प्राणों की पीड़ा हर,
नव जीवन का दे सकती वर,
वह अधरों पर धर मदिराधर !

यदि कहीं नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अंदर,
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर !

याद

बिदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ़ के मेघों से घिर रहा बराबर अंबर!

मैं बरामदे में लेटा, शय्या पर, पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव!
सक्रिय यह सकरुण विषाद,—मेघों से उमड़-उमड़कर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अंतर!

मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कंठित भेकी को,
बर्हभार से मोर लुभाता मेघ - मुग्ध केकी को,
आलोकित हो उठता सुख से मेघों का नभ चंचल,
अंतरतम में एक मधुर स्मृति जग-जग उठती प्रतिपल!

कंपित करता वक्ष धरा का घन गभीर गर्जन स्वर,
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओं में अंबर!

भीनी - भीनी भाप सहज ही साँसों में घुलमिल कर
एक और भी मधुर गंध से हृदय दे रही है भर !

नव असाढ़ की सन्ध्या में, मेघों के तम में कोमल,
पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों से विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत सी जलकर उज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल !

अगुंठिता

वह कैसी थी,
अब न बता पाऊँगा
वह जैसी थी !

प्रथम प्रणय की आँखों ने था उसको देखा,
यौवन उदय,
प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा !

ऊषा का अवगुंठन पहने,
क्या जाने खग पिक से कहने,
मौन मुकुल सी, मृदु अंगों में
मधुऋतु बंदी कर लाई थी !
स्वप्नों का सौन्दर्य, कल्पना का माधुर्य
हृदय में भर, आई थी !

वह कैसी थी,
वह न कथा गाऊँगा
वह जैसी थी !

'क्या है प्रणय ! ' एक दिन बोली, 'उसका वास कहाँ है ?
इस समाज में ? देह मोह का,
देह द्रोह का त्रास जहाँ है ?

'देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की
यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की !

'बँधकर हृदय मुक्त होते हैं,
बँधकर देह यातना सहती,
नारी के प्राणों में ममता
बहती रहती, बहती रहती !

'नारी का तन माँ का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उत्कंठित !

'तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हें देती : मैं अबला
मुझको घर की क्षेम चाहिए !

'हृदय तुम्हें देती हूँ, प्रियतम,
देह नहीं दे सकती,

जिसे देह दूँगी जब निश्चित
स्नेह नहीं दे सकती !

'अतः बिदा दो मन के साथी,
तुम नभ के, मैं भू की वासी,
नारी तन है, तन है, तन है,
हे मन प्राणों के अभिलाषी !

नारी देह शिखा है जो
नव देहों के नव दीप सँजोती,
जीवन जैसे देही होता,
जो नारीमय देह न होती ?

'तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा, तुम
प्रेम, ज्ञान औ' सत्य प्रकाशी,
नारी है सौन्दर्य, प्राण,
नारी है रूप सृजन की प्यासी !

'तुम जग की सोचो, मैं घर की,
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी,
लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नहीं प्रेम संन्यासी ?'

'बिदा !' 'बिदा !'
'शायद मिल जाएँ यदा कदा !'

मैं बोला, 'तुम जाओ,
प्रसन्न मन जाओ, मेरा आशी;'
उसके नयनों में आँसू थे,
अधरों पर निश्छल हाँसी!

वह क्या समझ सकी थी, उस पर
क्यों रीझा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी!

मैं मौन रहा,
फिर स्वतः कहा,

'बहती जाओ, बहती जाओ,
बहती जीवन धारा में,
शायद कभी लौट आओ तुम,
प्राण बन सका अगर सर्वहारा मैं!'

स्वप्न सखी

आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अंतर में आओ,
फूलों की नव कोमलता में जीवन को लिपटाओ !
इन प्रिय स्नेह सरों में अपलक शरद नीलिमा जागृत,
चपल हंस पंखों से चुंबित सरसिज श्री बरसाओ !
इस प्रवाल प्याले की मधु मदिरा सखि, उर मादन,
तुहिन फेन स्मित स्वर्णिम प्रीति सुधा घट मुझे पिलाओ !

स्नेह लता-से पुलक पाश में कस मुकुलों के कोमल
उर में सुमधुर उर सी, तम में तन सी मृदुल समाओ !
सुरभित साँसों के पलने में मर्म स्पृहा कर दोलित
फूलों के मधु शिखरों पर प्राणों के स्वप्न सुलाओ !
इन मांसल चंपक झरनों से लिपटीं विद्युत् लपटें,
प्रणय उदधि में अंतर की ज्वाला को अतल डुबाओ !
लेटा नव लावण्य चाँदनी सा बेला के वन में,
खिलती कलिकाओं की शोभा कोमल सेज सजाओ !
स्वप्नों की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में,
चंचल विद्युत् को सलज्ज ज्योत्स्ना के अंक लगाओ !
आओ हे प्रिय स्वप्न संगिनी, आकुल उर में आओ !

नारी जग

पृथक् न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के सँग उसने पग,
रंग तरंगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुषमित जग का मरु मग !
गुड़ियों के सँग प्रिय किशोर क्षण
बीते, उर में भर मृदु कंपन,
खींच कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वर्षण !
वक्ष श्रोणि ने बढ़, कटि ने छँट
सौष्ठव रेखाएँ कीं रूपित,
मुग्ध नयनिमा, सलज लालिमा,
पद जड़िमा ने तरुणी चित्रित !

शोभा कँपती लहरी सी उठ
हुई देह तनिमा में स्तंभित,
देख मुकर-से तन में निज मुख
रही मधुरिमा छबि से विस्मित !

कोमलता बढ़ कल्पलता सी
अंगभंगि में हुई प्रस्फुटित,
सुन्दरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित!

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप में विकसित
मधुर स्त्रीत्व में धातृ कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित!
जगा सलज चेष्टाओं में अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अंगुलि चालन में
छवि की दीप शिखाएँ कंपित!

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
आभा जीवी नयनों को कर
कोमल शोभा-तम से मोहित!
स्वप्नों से गुंफित यमुना जल
गाढ़ नीलतम हुआ तरंगित,
साँस ले रहे फूलों के रंग
सौरभ की कबरी में दोलित!

कांचन सी तप ज्वलित कामना
ढली सघन जघनों में दीपित

बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार में हो चिर पुंजित !
बाहु लताएँ फूल पाश बन
पुलकों में हो उठीं पल्लवित
कोमल करतल, चंचल पदतल
जीवन के जावक से रंजित !

रूप शिखा की श्री सुषमा से
हुए गेह ग्राँगन ग्रालोकित,
वातायन में उदित कला शशि
गृह-गृह के गवाक्ष चिर शोभित !
कलि कुसुमों ने भूतल को रँग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसों में बहने को
बना समीर गंधवह सुरभित !
ज्योत्स्ना सकुची, उषा लजाई,
रहीं तारिकाएँ ज्यों विस्मित,
स्रोत बहे, सरसी लहराई,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभावित !

हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया ग्रमर स्वप्नों से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटों में
स्वीकृत किया मर्त्य सुख बंधन !

दो टुकड़ों में सिमिट नीलिमा
रही मौन नयनों में अपलक,
लजा अधर नव प्रणय वचन से
गए लालिमा से दुहरे रँग!
खिलती कलियों ने मार्दव भर,
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा में वेष्टित कर!

मधु ने फूल ज्वाल से आवृत,
किया शरद ने लेखा-मुख स्मित,
मणि मुक्तामय खनि सागर ने,
भू ने स्वर्ण रजत से झंकृत!
जगा हृदय में प्रीति दर्प नव
शत-शत नयनों से हो लक्षित,
हाव भाव में मधुर संयमन
शोभा तन सज्जा से संवृत!

तड़ित् गर्भ, सुरधनु कबरी घन
ज्यों कृतार्थ होता भू पर झर,
मधुर अप्सरा बनी जनी अब
कुल प्रदीप से ज्योतित कर घर!
मातृ स्नेह बरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,
सहधर्मिणी बनी वह प्रिय की
सुख दुख की मंत्री, चिर सहचर!

मर्म कथा

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !
तुमने चिर अनजान
प्राणों से !

गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा

विवश, फूटते गान,
प्राणों से !

यह विदेह प्राणों का बंधन,
अंतर्ज्वाला में तपता तन !
मुग्ध हृदय, सौन्दर्य शिखा को
दग्ध कामना करता अर्पण !

नहीं चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणों से !

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !

प्रणय कुंज

तुम प्रणय कुंज में जब आई
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मंजरित हृदय की अमराई !

मलय हुआ मद चंचल
लहराया सरसी जल
अलि गूँज उठे, पिक ध्वनि छाई !

अब वह स्वप्न अगोचर,
मर्म व्यथा, मंथित करती अंतर,
प्राणों के दल झर-झर,
करते आकुल मर्मर !

चिर विरह मिलन में भर लाई
तुम प्रणय कुंज में जब आई !

शरद चाँदनी

शरद चाँदनी !
विहँस उठी अतल मौन
नीलिमा उदासिनी !

आकुल सौरभ समीर
छल-छल चल सरित नीर,
हृदय प्रणय से अधीर,
जीवन उन्मादिनी !

अश्रु सजल तारक दल,
अपलक दृग गिनते पल
छेड़ रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी !

जगीं कुसुम कलि थर्-थर्
जगे रोम सिहर-सिहर,
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी !
शरद चाँदनी !

मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी !

पर्वत को जल, दारु को अनल,
वारिद को दी विद्युत् चंचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी !

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन !
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी !

प्राण पलेंगे, देह जलेगी,
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी,
सोने सी तप, निखरेगी
प्रेयसि प्रतिमा, ममता अगाध दी !
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !

गोपन

मैं कहता कुछ, रे बात और !
जग में न प्रणय को कहीं ठौर !

प्राणों की सुरभि बसी प्राणों में
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा !

क्यों वृथा प्रेम आया जग में
सिर पर काँटों का धरे मौर !
मैं कहता कुछ, रे बात और !

सौन्दर्य चेतना विरह मूढ़,
मधु प्रणय भावना बनी मूक,
रे हूक हृदय में भरती अब
कोकिल की नव मंजरित कूक !

काले अक्षर का जला प्रेम
लिखते कलियों में सटे भौंर !

मैं कहता कुछ, रे बात और !

स्वप्न बंधन

बाँध लिया तुमने प्राणों को फूलों के बंधन में,
एक मधुर जीवित आभा सी लिपट गई तुम मन में !
बाँध लिया तुमने मुझको स्वप्नों के आलिंगन में !

तन की सौ शोभाएँ, सम्मुख चलती फिरती लगतीं,
सौ सौ रंगों में, भावों में तुम्हें कल्पना रँगती,
मानसि, तुम सौ बार एक ही क्षण में मन में जगती !

तुम्हें स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न आँक उर में छवि,
तो आश्चर्य प्राण बन जावें गान, हृदय प्रणयी कवि ?
तुम्हें देख कर स्निग्ध चाँदनी भी जो बरसावे रवि !

तुम सौरभ सी सहज मधुर बरबस बस जाती मन में
पतझर में लाती वसंत, रस स्रोत विरस जीवन में,
तुम प्राणों में प्रणय, गीत बन जाती उर कंपन में !

तुम देही हो ? दीपक लौ सी दुबली, कनक छबीली,
मौन मधुरिमा भरी, लाज ही सी साकार लजीली,
तुम नारी हो ? स्वप्न कल्पना सी सुकुमार सजीली ?

तुम्हें देखने शोभा ही ज्यों लहरी सी उठ आई,
अंग भंगिमा तनिमा बन मृदु देही बीच समाई,
कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन धर पाई!

फूल खिल उठे, तुम वैसी ही भू को दी दिखलाई,
सुन्दरता वसुधा पर खिल सौ सौ रंगों में छाई,
छाया सी ज्योत्स्ना सकुची, प्रतिछबि सी उषा लजाई!

तुम में जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन,
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन!
नहीं जानती क्या निज बल तुम, निज अपार आकर्षण?

बाँध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बंधन में
तुम जानो, क्या तुमको भाया, मर्म छिपा क्या मन में,
इन्द्र धनुष बन कर हँसती तुम अश्रु वाष्प के घन में!

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो, प्रिये, तुम,
देह तनिमा अश्रु धोई !
रूप की लौ सी सुनहली
दीप में तन के सँजोई !

सेज पर लेटी सुघर
सौन्दर्य छाया सी सुहाई,
काम देही स्वप्न सी
स्मृति तल्प पर तुम दी दिखाई !

कल्पना की मधुरिमा सी
भाव मृदुता में डुबोई !

देह में मृदु देह सी
उर में मधुर उर सी समा कर,
लिपट प्राणों से गई तुम
चेतना सी निपट सुन्दर !

प्रेम पलकों पर अकल्पित
रूप की सी स्वप्न सोई!

विरल पट से झलक
ऊर्मिल अलक करते हृदय मोहित,
सरित जल में तैरती ज्यों
नील घन छाया तरंगित!

काम वन में प्रणय ने हो
कामना की बेलि बोई!

लालसा - तम - से तुम्हारे
कुन्तलों के जाल में भ्रम
क्यों न होता प्यार अंधा
छबि अपार निहार निरुपम!

मर्म की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासों में पिरोई!

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
मर्म इच्छा से विनिर्मित,
हृदय शतदल में सतत तुम
झूलती अभिलाष स्पंदित!

सार तत्वों की बनी तुम
देह भूतों बीच खोई!

हृदय तारुण्य

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण मंद संचरित!
प्राणों का पिक बोल उठा फिर
अंतर में कर ज्वाल प्रज्वलित!

डाल-डाल पर दौड़ रही वह
ज्वाल रंग रंगों में कुसुमित,
नस-नस में कर रुधिर प्रवाहित
उर में रस वश गीत तरंगित!

तन का यौवन नहीं, हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित,
फिर जग में सौन्दर्य पल्लवित
प्राणों में मधु स्वप्न जागरित!

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण अंध संचरित!
प्राणों में पिक बोल उठा फिर
दिशि-दिशि में कर ज्वाल प्रज्वलित!

मानसी

[यह पुरुष नारी का रूपक है। नेपथ्य में गीत वाद्य : दृश्यों के अनुरूप वेश विन्यास : पिक मिलन भोग का, पपीहा विरह त्याग का प्रतीक है। कुल नारियाँ शालीन रंगों के वस्त्रों में, गोपिकाएँ चटकीले झूलते लहँगों और ओढ़नियों में, भिक्षु भिक्षुणियाँ केसरी और गेरुवे लवादों में, तथा आधुनिकाएँ विविध प्रान्तों में सुरँग सुरुचिपूर्ण परिधानों में नाचती हैं। अंतिम दृश्यों में भविष्य के निर्माता कृषक श्रमिक, तथा मध्य उच्च वर्गों के युवक सफेद और खाकी खादी में, एवं संस्कृति की संदेश वाहिकाएँ नव युवतियाँ रंगीन रेशमी वस्त्रों में, नृत्य नाट्य एवं अभिनय करती हैं। जहाँ अकेले पिक चातक तथा युवक युवती की आत्मा के गीत हैं, वहाँ प्रदर्शन की सुविधानुसार अन्य युवक युवतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।]

प्रथम दृश्य

(१)

युवक

पिक, गाओ !
नव जीवन के चारण बन
नव प्रणय कथा बरसाओ !
पिक गाओ !

प्रीति मुक्त हो, बने न बन्धन,
विरह मिलन देवें आलिंगन,
हो प्रतीति-मन नर नारी जन
दिशि-दिशि ज्वाल जलाओ !

आज वसंत विचरता भू पर
नव पल्लव के पंख खोल कर,
नवल चेतना की स्वर्णिम रज
गंध समीर, उड़ाओ !

कौन तरुणि तुम हँसी रँगीली
बिखराती आँसू से गीली ?
जीवन गैल, प्रिये कँकरीली
आओ, पर, तुम आओ !
पिक गाओ !

(२)

पिक

बौरी थी यौवन अमराई,
गंध मंद शीतल पुरवाई,
वह मुग्धा जीवन में आई,
नव ऊषा सा सहज लजाई !
कूहू, कुहू कुहू !

फूलों का उसका कोमल तन,
सौरभ की साँसों का मृदु मन,

रोओं - रोओं में आलिंगन,
चित्र लिखी थी रूप लुनाई !
कूहू, कुहू कुहू !

कुटिल कँटीला इस जग का मग,
रँगे रुधिर से जीवन के पग,
पीड़ा की प्रेमी की रग - रग,
व्यथा प्रेम की ही परछाईं !
कूहू, कुहू कुहू !

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे,
मनस्ताप वह, मनस्ताप रे,
जग जीवन के लिए पाप रे,
नभ में विरह घटा घिर आई !
कूहू, कुहू कुहू !

(३)

युवक

तुम जाओ, सखि जाओ !
पाप शाप से बचो, प्रिये, तुम
ताप न उर में पाओ !
तुम जाओ !

प्राण, प्रणय विष पान मत करो,
प्राणों को दे प्राण मत हरो,

प्रिय का उर में ध्यान मत धरो,
पथ में मत बिलमाओ !

जब तक जीवन में वसंत है,
यौवन में मुकुलित दिगंत है,
आशा सुख सपने अनंत हैं,
प्रिय का मोह भुलाओ !
तुम आओ !

युवती

जैसे तुम हो, वैसे ही जन,
वही हृदय, छबि लोभी लोचन,
वही प्रणय का ताप है गहन,
तुम मत हृदय दुखाओ !
प्रिय, आओ !

किसको रे वह ऐसी क्षमता
रोक सके प्राणों की ममता,
यह स्वभाव मन का, वह रमता,
मुझको राह सुझाओ !
प्रिय, जाओ !

युवक

फूलों की मृदु देह तुम्हारी,
काँटों की कटु गैल हमारी,

प्रणय ताप अति दुःसह प्यारी,
वृथा न हृदय लुभाओ!
तुम जाओ!

प्रणय अचिर, दो दिन का सपना,
तन का तपना, मन का तपना,
सुन न सकूँगा प्रिये, कलपना
अपना सुख न गँवाओ!
तुम, जाओ!

दूसरा दृश्य

(४)

पपीहा

पी कहाँ, पी कहाँ ?
प्रेम बिना सूना जग जीवन,
प्रिय के मधुर प्रतीक्षा के क्षण,
बरसाओ, प्रिय, स्वाति सुधा कण
बाट जोहता विश्व यहाँ!

प्रेम बिना जन हैं जीवन-मृत,
प्रेम बिना अपने में सीमित,
मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत,
मृत्यु न आती पास तहाँ!

प्रेम नहीं प्राणों का बन्धन,
प्रेम न अस्थिर विरह मिलन क्षण,
प्रेम मुक्ति है, प्रेम ही सृजन,
सुख दुख में आनन्द जहाँ!

प्रेम वृष्टि में कर अवगाहन
बनो भीत प्रणयी चिर पावन,
जहाँ हृदय में लगन, स्वाति घन,
बरसेंगे हो विवश वहाँ!

प्रेमी के आँसू के हों घन
प्रेयसी की स्मृति के विद्युत् व्रण,
चिर अतृप्ति की उर में गर्जन,
विरह मिलन बन जाय महा!

(५)

युवक

तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ,
जीवन-पथ में सौन्दर्य किरण बरसाओ!

यह सच है, सूना प्रेम बिना जग जीवन,
नर नारी उर का प्रणय आज कटु बंधन
तुम छाया नारी से मानवी कहाओ!

तुम विरह मिलन से मुक्त प्रणय बन आना,
तन भीति रहित, भव जीवन को अपनाना,
निज हृदय माधुरी में जग को नहलाओ!

तुम सृजन शक्ति बन मेरे उर में गाना,
तुम चिर प्रतीति बन जन मन में घुल जाना,
प्राणों में स्वर्गिक सौरभ मधुर बसाओ !

जन एक प्राण, दो देह, अभिन्न हृदय हों,
प्रत्यय हो मन में, संशय नहीं उदय हो,
उर की उर, जीवन की जीवन बन जाओ,
तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ !

युवती

मैं आती हूँ, जीवन, आती हूँ प्रियतम,
हृदयों का प्रेम प्रकाश, नहीं तन का तम,
तुम खोल हृदय पट, प्रिय, फिर मुझे बुलाओ,
युवक—तुम आओ मानसि, आओ, प्रेयसि, आओ !

प्रिय, मैं ही सीता, मैं सावित्री, राधा,
हरती आई जग जीवन पथ की बाधा,
पा मातृ शक्ति, जन मंगल, प्राण, मनाओ !
युवक—आओ हे आभा देही देवी, आओ !

मैं गार्गी, घोषा, सूर्या, अदिति, प्रवीणा,
भारती, मालती, मल्ली, खना, नवीना,
जन-जन के उर में तुम आह्वान उठाओ !
युवक—आओ हे, युग की दिव्य विभा बन आओ !
मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा,
मैं भक्ति शक्ति सौन्दर्य माधुरी करुणा,

तम का विनाश, युग का निर्माण कराओ !
युवक—आओ हे, जग जीवन धात्री तुम आओ !

कब से मुख पर धर लज्जा का अवगुंठन,
मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन,
मैं तुम्हें शक्ति देती, व्यवधान हटाओ,
युवक—आओ, ऊषा बन, अनवगुंठिते, आओ !

तीसरा दृश्य

(६)

युवती

मैं आई, फिर प्रियतम, आई !
युग-युग के रूपों की मेरी
देखो तुम छिपती परछाँई !
तुम क्या नर थे, मैं क्या नारी,
वधू अधीना, पति अधिकारी,
तुमने मेरी फूल देह पर,
तप्त लालसा सेज सजाई !

मैं मानवी आज जन धात्री,
मानव सहचरि, जीवन छात्री,
भीत न होओ, प्रिय, अब नारी
लेती जागृति की अँगड़ाई !

मुझको अब नारी तन धोना,
देह मोह निज तुमको खोना,

मैं यदि फिसलूँगी युग पथ पर
प्रिय, तुम होगे उत्तरदायी !

खिसका आज देह की छाया
आभा पुनः बनेगी माया
संस्कारों की क्रांति धरा पर
स्वर्ण शांति लाएगी स्थायी !

युग-युग के रूपों की मेरी
देखो, प्रिय, छिपती परछाँई !

(७)

सीता राम, सीता राम,
दया धाम, है प्रणाम !

हम नर - छाया, कुल नारी,
पतिव्रता, पति की प्यारी,
गृह दासी, सुत महतारी
कलह अविद्या अँधियारी !

लज्जा सज्जामय गुण ग्राम,
सीता राम, सीता राम !

जब घर से बाहर जातीं
छुईमुई सी कुम्हलातीं
देख जनों को सकुचातीं
नयन लालसा उकसातीं !

करतीं नित घर के सब काम,
सीता राम, सीता राम !

युग-युग से हम अवगुंठित,
गृह की दीप शिखा कम्पित
देह मोह में ही सीमित
पुरुष मात्र से आतंकित !
विधि सदैव से हम पर वाम,
सीता राम, सीता राम !

कौन जगाता हमें स्वजन
उर के तम में भर कम्पन,
दबा राख में पावन कण
उसे जगा दे आज पवन !
प्रभु अबला का लें कर थाम,
सीता राम, सीता राम !

(८)

राधे श्याम, राधे श्याम,
विश्व रूप हे ललाम !

आई थीं एक बार
हम तन मन प्राण वार,
सुन मधु मुरली पुकार
छोड़ नेह गेह द्वार,

तज निज सब काज काम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

यमुना की कल तरंग
बनीं चपल भृकुटि भंग,
अंग-अंग में उमंग
नृत्य गीत रास रंग,
अधरों पर मधुर नाम
राधे श्याम, राधे श्याम !

बही गीति काव्य धार
रस के निर्झर अपार,
संस्कृति वह थी उदार
जीवन था नहीं भार,
जन मन थे पूर्ण काम
राधे श्याम, राधे श्याम !

निखिल नायिका ललाम
हम ब्रज की रहीं वाम,
प्रीति रीति में प्रकाम,
बिकीं बँधी बिना दाम
मधुर भाव में अकाम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

कौन आज यह कुमार
करता फिर से प्रचार,
किसलिए कुलीन नार
करे फिर धराभिसार?
ऐसा वह कौन काम,
राधे श्याम, राधे श्याम!

(९)

बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण,
संघ की शरण!

इच्छा मानव दुख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण!
बुद्ध की शरण,...

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सेवा ही में हो जीवन रत,
सेवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण!
बुद्ध की शरण,...

जीव मात्र पर बरसे करुणा,
मानव उर में हरसे करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म रुज मरण !
बुद्ध की शरण,...

छोड़ो हे मिथ्या माया जग,
रोग जरा भय मृत्यु के विहग,
पकड़ो भिक्खु भिक्खुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण !
बुद्ध की शरण,...

किन्तु उच्छ्वसित हो रह-रह मन
प्राणों में भरता क्यों क्रंदन,
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन,
भिक्खु, ज्ञात क्या तुमको कारण ?
बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण,
संघ की शरण !

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन में जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओगे,
मधु में लिपटा कर पंख,मधुप, फिर सहज नहीं उड़ पाओगे !

सुख की तृष्णा बनतो विषाद,सुख दुख में जो तुम धीर रहो,
दुख में तुम रुकना सीखोगे, प्रिय, सुख में चरण बढ़ाओगे !

जो सहज तैर लेते जग में, आगे बढ़ पार वही पाते,
तुम रँगे लालसा रँग में जो, गेरुवा पहन के जाओगे !

आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूँघट पट नहीं उठाएँगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे ?

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन रस की धारा,
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे !

नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
तुम त्याग भोग को सृजन भावना में फिर नवल डुबाओगे !

(११)

रूप शिखा
आधुनिका !
फूलों की तन-सुवास,
लहरों का चरण लास
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत् का भ्रू विलास
रूप शिखा !

भाल पर न बेंदि सुघर
माँग में न सेंदुर वर

रँगतीं हम मधुर अधर
भ्रू धनु में कज्जल भर !
आधुनिका !

छूट गई पट संस्कृति,
हृदय रहित मधुराकृति,
दे रहीं प्रगति को गति
हम नव युग की भारति,
रूप शिखा !

युवक

शोभा का है प्रिय तन,
मुक्त नहीं तन से मन,
प्रिये, धीर धरो चरण
रिक्त क्या न यह जीवन ?
आधुनिका !

आई घर से बाहर,
चकाचौंध नयनों पर
छोड़ मध्य युग की डर
मानवी बनी न निखर !
रूप शिखा !

तुम थीं भारत महिमा,
आज ध्वंस युग प्रतिमा !

तुम में क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लघिमा !
आधुनिका !

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका
पथ रहीं दिखा !

हम गोरी भोरी प्रिय परियाँ
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुखर प्रणय की निर्झरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरियाँ,
हम प्रीति शिखा !

हम पढ़ी लिखीं नव नागरियाँ,
गोरस न, सुरा की गागरियाँ,
हम नहीं गृहों की चाकरियाँ,
हम नृत्य निपुण गुण आगरियाँ,
अति आधुनिका !

अंगों पर देतीं विरल वसन
जिससे विमुक्त निखरे यौवन,
हम तोड़ प्रणय के कटु बंधन,
मोहित करतीं जन-जन के मन,
हम प्रीति शिखा !

तन पर न हमारे अवगुंठन,
धर हाथ पकड़ लेतीं हम मन,
मिलतीं सब से खुल के गोपन
क्या हम आदर्श नहीं स्त्री जन ?
अति आधुनिका !

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरब में आईं,
पर तनिक नहीं जागृति लाईं,
ले फूल विहग की सुघराईं,
तुम विभव स्वप्न में अलसाईं,
अयि प्रीति शिखा !

तुमको प्रिय प्राणों का जीवन
अति भरा स्नायुवों में स्पंदन,
तुम हो युग जीवन की दर्पण,
यह प्रगति नहीं, री चपल चरण,
अति आधुनिका !

पाँचवाँ दृश्य

(१३)

नेपथ्य गीत

शारदे !
शरद हासिनी,
तम विनाशिनी, जग प्रकाशिनी,

नव स्मिति की ज्योत्स्ना बरसाओ
वसुधा पर, जीवन विकासिनी !
शारदे !

नवल नीलिमा से नत अंबर,
निर्मल सुख से कंपित सरि सर,
उतरो हे आभामयि, भू पर,
कुमुद आसनी !

शुभ्र चेतना सी नव विचरो,
भाव लहरियों को छू निखरो,
पृथ्वी के तृण-तृण पर बिखरो,
ज्योति लासिनी !

स्वप्न जड़ित भू रज हो चेतन,
तन से ज्योत्स्ना सा छिटके मन,
दृग तारा से झरें नव किरण,
हृदय वासिनी !

आओ, नव नारी बन आओ,
जग को शोभा में लिपटाओ,
नव जीवन की सुधा पिलाओ,
श्री विलासिनी !

(१४)

नेपथ्य गीत

ताराओं सी शुचि आत्माएँ मैं आज धरा पर भेजूँगी,
नव भाव शक्तियों से भू को मैं फिर से सहज सहेजूँगी !
मैं ही सोई जग के तम में, मैं ही शत रंगों में जगती,
मैं नर नारी में आज द्विधा हो जोवन के भुज भेंटूँगी !
जो जन मन आज उठे ऊपर मैं फिर धरती पर उतरूँगी,
मानव के उर में कर प्रवेश जग में नव जीवन वितरूँगी !
लो, आज तुम्हें छूती हूँ मैं अपने आभा के अंचल से,
मानव के स्वर्गिक स्वप्नों को मैं जीवन की देही दूँगी !

छठा दृश्य

(१५)

युवक

मानिनि, अधिक विलम्ब मत करो !
ओ मानव की स्वर्णिम मानसि,
उतरो, अब धरती पर उतरो !

युवती

प्रिय, मैं उतर धरा पर आई !
उदय शिखर पर नव युग की अब
देखो, स्वर्ण ध्वजा फहराई !

युवक

निखिल सृष्टि की बन तुम आशय,
जीवन की संकल्प असंशय,
अंतर्मन की चिर अभिलाषा
सृजन तत्व की सार बन प्रणय,

युग - युग के जग जीवन के
चिर ज्ञान कला से प्रेयसि, निखरो!
मानव की प्रिय मानसि, विचरो,
तुम फिर से धरती पर विचरो!

युवती

मानव उर की आशा के पर,
जीवन के स्वप्नों का तन धर,
सृजन चेतना सी सदेह तुम,
उर में मधुर प्रतीति बन अमर,

आज सृजन आनन्द से उमँग
मैंने जीवन रज लिपटाई!
पुनः सूक्ष्म से स्थूल बनी मैं
छिपीं ज्योति में सब परछाईं!

प्रिय, मैं उतर धरा पर आई!

(१६)

नेपथ्य गीत

आज हँस उठे जीवन के रँग !
फूल कली तृण सतरँग बादल
उमँग उठे पुलकित हो उर अँग !

मधुर अवनि अब, मधुर निखिल जग
मधुर नीलिमा, मधुर मुखर खग,
मधुर शूल, सुमधुर जीवन मग,
मधुर दुःख सुख, मधुर मरण सँग !

आशा अभिलाषाएँ हँसती,
प्रीति प्रतीति हृदय में बसती,
देव भावना उर में जगती
आत्मत्याग से झंकृत रग - रग !

नव प्रकाश से गई दिशा भर
लोट रहीं किरणें भू रज पर,
स्वर्ग धरा पर उतर गया हो,
स्वर्ण सृष्टि लगती सहज सुभग !

युग-युग के दुख ग्लानि पराभव
मनुज विजय से दीपित अभिनव,
मिला भिक्षु को त्रिभुवन वैभव
रोके रुकते नहीं प्रीति पग !

(१७)

युवक

पुण्य स्पर्श नारी का पावन !
देह प्राण से आज उठ गया
ऊपर प्रमदा का शोभा तन !
अब तक दीप शिखा तन छूकर
उद्दीपित होता था अंतर,
मुक्त चेतना का प्रवाह अब
बहता उस तन से संजीवन !

पुष्पों की श्री का तन शोभन
बना प्रीति का पुण्य निकेतन,
आज शांत उसका आकर्षण
आलोकित उसका उद्दीपन !

नारी अब न देह अवगुंठन,
केवल हृदय, हृदय वह मोहन,
अब वसुधा पर होगा स्वर्गिक
भावों के पुष्पों का वर्षण !
तन मन से ऊपर जो जीवन
पाकर उसका नव संवेदन
स्वर्ण धरा पर स्वर्ग सृजन नव
प्रिये, करेंगे अब भू के जन !

(१८)

युवती

धिक्, हम कैसे प्रेम पथिक !
प्रीति सूत्र में बँध कर जो हम
बन सकते भू के न श्रमिक !

आओ, भू को आज बुहारें
युग-युग का अघ कर्दम झारें,
जीवन का गृह प्रथम सँवारें,
जन श्रम से शोभित हों दिक् !

किया नहीं सौंदर्य सृजन जो
किया नहीं माधुर्य वहन जो
रे किस लिए मनुज जीवन जो
जन में नहीं विभव आत्मिक !

पिया नहीं जो जीवन मधु दुख,
मिला न जो भू रचना में सुख,
तो क्यों नर नारी हो उन्मुख,
युग्म प्रीति के रिक्त रसिक !

प्रिय, तुम बीज—प्राण, तुम धरती,
अंकुर सी उठ सृष्टि निखरती,

जीवन हरियाली मन हरती
प्रीति हमारी नहीं क्षणिक!

आओ, भरें धरा पर प्लावन
स्वेद सिक्त श्रम का चिर पावन,
युग्म प्रीति का विश्व जागरण
गावें मुक्त पिकी नव पिक!

(१६)

युवक युवतियाँ

प्रतीति प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो,
लिए हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो, न तुम डरो!

मनुष्यता रही पुकार
छोड़ देह मोह भार,
खोल रुद्ध हृदय द्वार,
देह द्रोह दो विसार!
भाल के कलंक पंक
को मनुष्य के हरो!

महान् क्रांति आज हो,
अखंड राम राज हो,

अभीष्ट लोक काज हो,
सुसभ्य जन समाज हो!
उठो, सदुच्च ध्येय, धैर्य,
शौर्य, वीर्य को वरो!

न रक्तपात युद्ध हो,
न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो,
विदेह मन न क्रुद्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु आज
साथ साथ जो मरो!

क्षुधार्त रे असंख्य प्राण,
नग्न देह, बुद्धि म्लान,
रोग व्याधि से न त्राण,
निश्चय लो आज जान,
तुम प्रथम मनुष्य हो,
न युग्म मात्र, स्त्री नरो!

विनम्र शिष्ट निरभिमान,
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान,
युक्त कला नृत्य गान,
स्वर्ग तुल्य हो धरा,
जघन्य रूढ़ियो, झरो!

(२०)

नव युवतियाँ

ये पारिजात प्रिय पूजन के,
ये आम्र मौर अभिनंदन के,
ये सित सरोज पावन मन के,
अपलक गुलाब प्रेमी जन के,

यह संस्कृति का संदेश नवल,
तुम ग्रहण करो, तुम ग्रहण करो!
यह शास्ति सभ्यता की प्रियतम,
तुम वहन करो, तुम वहन करो!

भीनी चंपा नव भावों की,
यह जुही सुघर रुचि चावों की,
मृदु शीलमयी प्रिय मौलसिरी,
उर गरिमा से केतकी भरी,
तुम स्नेह दया सहृदयता से
जन मन की ईर्ष्या घृणा हरो!

ये बेला की कलियाँ स्मृति की,
यह कुंद कली निश्छल स्मिति की,
स्मित चारु चमेली सज्जा की,
नत छुईमुई प्रिय लज्जा की,

तुम नव जीवन की श्री शोभा,
सुख आशा वैभव आज वरो !

मंजरि अशोक की मंगलमय,
रोमिल शिरीष शोभा में लय,
ये हँस - हँस झरते हर सिँगार,
यह पुलकाकुल कचनार डार,
तुम विलय साधना सत्य त्याग से
भू बाधाएँ निखिल हरो !

स्वप्नों की कुँई मधुर मोहन,
पाटल विराग से गैरिक तन,
कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर,
स्वर्णिम गेंदा संतोष अमर !
नव मानवता की सौरभ से
तुम वसुंधरा को आज भरो !

ये पौरुष से रक्तिम पलाश,
ये स्वर्ण शांति के अमलतास,
मालती भरी उर ममता से,
सुर चंदन सौरभ क्षमता से,
मानव जीवन के योग्य बना
इस पृथ्वी को, मानव विचरो !
यह संस्कृति का संदेश नवल…!

युवक—प्रतीति प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो!

युवतियाँ—हृदय सुमन, प्रणय सुरभि,
ग्रहण करो, ग्रहण करो!

युवक—लिए हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो, न तुम डरो!

युवतियाँ—सृजन विकास की शिखा
वहन करो, वहन करो!

स्मृति

परित्यक्ता वैदेही सी ही
अब हृदय कामना उठी निखर
प्राणों की ममता, अश्रु स्नात,
कृश, शरद शुभ्र लगती सुंदर !

प्रेयसि की मुख छवि मेघ मुक्त
शशि रेखा सी उगती मन में,
नीरव नभ में विद्युत् घन सी
एकाकी स्मृति जगती क्षण में !

ज्योत्स्ना में झंझा से कंपित
हलकी फुहार सी पड़ती झर
वह भीगी स्मृति, मानस तट पर
छाया लहरी सी बिखर-बिखर !

सुख दुख की लपटों में लिपटी,
भू के अंगारों पर पग धर,

वह बढ़ती स्वप्नों के पथ पर
शत अग्नि परीक्षाएँ दे कर !

अब प्रेमी मन वह नहीं रहा
ध्रुव प्रेम रह गया है केवल,
प्रेयसि स्मृति भी वह नहीं रही
भावना रह गई विरहोज्वल !

बाहर जो कुछ भी हो बदला
मन का पट बदल गया भीतर
विकसित होती चेतना, उधर
परिणत जग जीवन का संगर !

मधु गीत

नव वसंत क्या लाया !
प्राणों की घाटी में फिर
फूलों का पावक छाया !

सुन कोयल का दाहक कूजन
मधुपों का उन्मादक गुंजन,
स्वप्नों ने अंतर मर्मर भर
कैसा गीत जगाया !

रँग - रँग की इच्छाएँ हँस - हँस
मन को पागल करतीं बरबस,
पग-पग पर रुकती मैं उन्मन
किसने मुझे लुभाया !

घिरते आज क्षितिज में क्यों घन
सौरभ के, भावों के मादन,

चल वसंत के नभ में मंथर
सावन क्यों घिर आया ?

अधरों में नव कलियों की स्मित,
पलकों में स्मृति की झर अविदित,
मन समीर के पंखों में,
उर में समुद्र लहराया ?

भाव स्मृति

वन फूलों की तरु डाली में
गाती अह, निर्दय गिरि कोयल,
काले कौओं के बीच पली,
मुँहजली, प्राण करती विह्वल !

कोकिल का ज्वाला का गायन,
गायन में मर्म व्यथा मादन,
उस मूक व्यथा में लिपटी स्मृति,
स्मृति पट में प्रीति कथा पावन !

वह प्रीति-तुम्हारी ही प्रिय निधि,
निधि, चिर शोभा की ! (जो अनन्त
कलि कुसुमों के अंगों में खिल
बनती रहती जीवन वसन्त !)

उस शोभा का स्वप्नों का तन,
(जिन स्वप्नों से विस्मित लोचन !

जो स्वप्न मूर्त हो सके नहीं,
भरते उर में स्वर्णिम गुंजन !)

उस तन की भाव द्रवित आकृति,—
(जो धूपछाँह पट पर अंकित !)
आकृति की खोई सी रेखा
लहरों में बेला सी मज्जित !

यौवन बेला वह, स्वप्न लिखी,
छबि रेखाएँ जिसमें ओझल,
तुम अंतर्मुख शोभा धारा
बहती अब प्राणों में शीतल !

प्राणों की फूलों की डाली,
स्मृति की छाया मधु की कोयल,
यह गीति व्यथा, अंतर्मुख स्वर,
वह प्रीति कथा, धारा निश्छल !

स्मृति गीत

आकुल स्वर लहरी आती है!
दूर, सुनहली छाँहों में छिप
काम श्याम कोयल गाती है!

चूर्ण मुकुर, चंचल मानस जल,
स्मृति पुलिनों को छूता छल-छल,
यौवन मद सौंदर्य भरी
भावना तरी उमगी जाती है!

प्राण गुह्य आकांक्षा पुलकित
बर्ह भार चल रँग फुहर स्मित,
मेघों में छिप दिप शशि रेखा
इंद्रधनुष शत फहराती है!

कितने मधु निदाघ मुरझाते,
कितने जलद शरद मुसकाते,
अह, युग - युग के विरह मिलन की
यह पिक ध्वनि अक्षय थाती है!

नील अंक में तन्मय शोभित
हरित धरा नत मुख हरती चित,
कौन साध वह? उठती गिरती
विस्तृत सागर सी छाती है!

मुग्ध प्रीति की चिनगी कोयल
मुक्त अमित का आकर्षण बल,
एक छंद स्वर लय में झंकृत
अभिव्यक्ति संसृति पाती है!

भाव रूप

गंध अमित !
कब तुम आई अदृश्य
हृदय कुंज छंद ध्वनित !

सूक्ष्म सुरभि रे अनाम,
पुलकित मन, तन सकाम,
अश्रुत संगीत मंद्र
रोम रंध्र में झंकृत !

ध्यान मौन प्रीति कुंज,
सन्निधि मधु गंध पुंज,
कनक शिखा तुम अकंप
उर प्रदीप में स्थित नित !

स्पर्श स्रवित हर्ष स्रोत,
निःश्रेयस् ओतप्रोत,
शोभा की पुष्प वृष्टि
दृष्टि-शून्य सुरधनु स्मित !

मानव उर मोह मग्न
बाह्य रूप राशि लग्न
व्यर्थ रूप, जो अरूप
सत्य ज्योति स्पर्श रहित !

तुम्हें देख मुँदे नयन
अंतस् में खुले गहन
सत्य वही जिसमें तुम
भाव रूप अभिव्यंजित !

मनोभव

पावक की अँगुलियाँ बजातीं
भावों की जल वीणा,
मौन हृदय तंत्री से करता
कौन पुरुष रस क्रीड़ा ?—
प्राणों को भाया !

आज ध्यान के अंबर से हँस
प्रेम उतर आया,—

जीवन शोभा का रच उत्सव,
अंतर में भर स्वर्णिम मधु रव
उदय हुआ नव रूप मनोभव
'रोम हर्ष छाया !

सुख दुख भय का अंत न उद्गम,
रवि प्रकाश में भी गोपन तम ;

जगी ज्योति मानस में निर्भ्रम
कनक गौर काया !

पावक प्रेम, प्रेम जल वीणा,
कला हुई रस सिद्ध प्रवीणा,—

उज्वल तमस कलुष का आनन,
जड़ उर में जागा नव चेतन,
पूर्ण हुई जन-भू उसको पा,
वह प्रकाश-छाया,
प्राणों को भाया !

पुनर्मूल्यांकन

इंद्रिय सुख से रहित मान मानव आत्मा को
बना गए तुम जीवन को मरुथल
आशाकांक्षा को मृगजल !

काम दग्ध हे, क्या सोचा तुमने ?—असंग बन
खोल न पाए काम ग्रंथि तुम, मुक्त न कर पाए
निज निर्मम इंद्रिय कुंठित प्राण क्षुधित
अंतस्तल !

उदर क्षुधा को स्वीकृति दे, अब अर्थ भित्ति पर
जन समाज का उठता जड़ प्रासाद,—
अस्थि पंजर स्फटिकोज्वल !

काम उपेक्षित युगों - युगों से, मनुजोचित संस्कार
न कर पाया, पशु स्तर पर कलुष पंक में सना,
वासना विह्वल !

इंद्रियजित् तुम ? धिक् अबोध ! तन मन प्राणों से
स्वर्णिम आत्मा को बिलगा कर

स्वर्ग बीज को धरती से कर वंचित,—

नष्ट हुए विद्यांऽधकार में भटक स्वयं तुम,
तन मन इंद्रिय आत्मिक पोषण रहित
पुष्प स्तबकों-से कुम्हला, हुए अविद्या तम दूषित,—
जर्जर, जीवन-मृत !

धन्य आत्म द्रष्टा, स्रष्टा की सृजन कला का
पी न सके तुम स्वच्छ विषय मधु,
आनन्दामृत !

ताप हीन कर रवि प्रकाश को,
प्राण हीन मानव आत्मा को,
ब्रह्म रंध्र से मुक्ति शून्य में
उस कर गए निष्फल लुंठित,—
जीर्ण वस्त्रवत्,
देह प्राण मन स्पर्श कलंकित !

निश्चय ही, दुर्धर्ष समर जन युग के सम्मुख,
मानव आत्मा को जाग्रत् हो
भीतर से होना नव दीपित
बाहर से विस्तृत, नव विकसित !

मिट जाए शिर का कलंक (भीतर अमर्त्य है मर्त्य !)
मुक्त हो काम द्रोह से (काम दासता जो !)
मानव पाए स्वरूप निज,

तन मन प्राणों से ज्योतित,
नख शिख संयोजित !

स्वीकृत कर सम्पूर्ण प्रकृति को, पूर्ण मनुज को,
फिर से हो जीवन पदार्थ का, मनोद्रव्य का,
स्थूल सूक्ष्म का सागर मंथन,
नव मूल्यांकन !

निश्चेतन, उपचेतन भुवनों को दीपित कर,
प्राण कामना का पंकिल मुख धोकर,
उसको स्वस्थ मूल्य दे मानव,
निज स्वीकृति दे नूतन !

तब देखे मानव आत्मा को
पूर्ण कलाओं में वह विकसित,
बाहर भीतर के ऐश्वर्यों से आलोकित,
स्वयं प्रकाशित,—

पावनता आनंद प्रेम शोभा महिमा की
जीवन प्रतिनिधि जन धरणी को
स्वर्ग बना देगी वह निश्चित !

○ ○ ○